मर्म का स्पर्श

प्रयाग शुक्ल
कवि-आलोचक

संपर्क : एच.-416,
पार्श्वनाथ प्रेस्टीज, सेक्टर 93
नोएडा-201304 (उ.प्र.)

प्रायः सभी देशों-समाजों में कथा परंपराएं कुछ अलग प्रकार से रूप और आकार लेती रही हैं। अलग प्रकार से रूप और आकार लेने का कारण, स्वयं देशों-प्रदेशों-अंचलों की चारित्रिक विशेषताएं, भाषाएं और वहां की कुल प्रकृति भी रही है। ये परंपराएं समय के साथ अपने को पुनर्नवा भी करती रही हैं; जैसा कि आधुनिक काल में, आधुनिक प्रवृत्तियों के कारण घटित हुआ है और किसी-न-किसी रूप में सर्वत्र व्याप्त एक 'आधुनिक बोध', कविता और कथा में, प्रायः सभी समाजों और देशों में, कुछ समान लक्षणों के साथ उभरा है। इन समान लक्षणों में से एक तो यही है कि प्रायः सभी जगह अंतर्मन की एक नई पड़ताल शुरू हुई है। और अंतर्मन की हलचल में बाहर की चीजों की, घटनाओं-प्रतिघटनाओं की, प्रतिबिंबित छायाएं, ध्यान देने लायक बनी हैं। अकसर कोई कहानी किसी व्यक्ति के भीतरी सोच-मन ही मन में चल रहे सोच-के साथ शुरू होती है, और उसकी दुनिया को इस प्रकार उद्घाटित करती हुई किसी मर्म तक हमें ले जाती है।

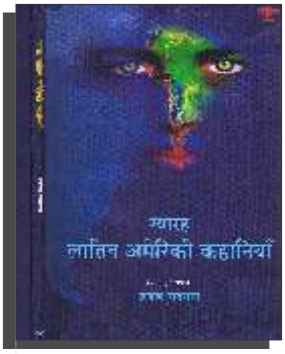

पुस्तक : ग्यारह लातिन अमेरिकी कहानियां
चयन एवं संपादन : राजीव सक्सेना
प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठ : 112
मूल्य : रु. 100

आधुनिक काल की ये लातिन अमेरिकी कहानियाँ भी इसका अपवाद नहीं हैं। 'ग्यारह लातिन अमेरिकी कहानियां' पहली कहानी, 'टैंगो' (लुइसा वालेंसुएला) भी हमें एक 'बार' में काम करने वाली लड़की की आशा-आकांक्षाओं, उसके अकेलेपन आदि की ओर ले जाती है। इस मर्मभरी सुंदर कहानी का सुंदर अनुवाद किया है अलका जसपाल ने मूल स्पानी से ही। प्रसंगवश यह कहना-बताना जरूरी है कि स्पानी न जानने के बावजूद अगर मैं अनुवाद को सुंदर कह रहा हूं तो क्यों कर कह पा रहा हूं! हां, मैं इसे सुंदर कह पा रहा हूं तो इसीलिए कि सांद्रा नाम की युवती की ओर से 'मैं' शैली में लिखी गई यह कहानी, अपने संबोधन की आत्मीयता की छाप मुझ पर डालती है। और मेरी भाषा में वह 'आत्मीय संबोधन' मुझ तक आत्मीय ढंग से ही पहुंचता है। यह मुझे मेरी भाषा में कही गई कहानी लगती है : हिंदी यहां औपचारिक, किताबी और बनावटी नहीं लगती। उसमें अनुवाद का नहीं मानों 'रचना' का एक ताजापन है। कहानी की लेखिका लुइसा वालेंसुएला (जन्म : 1938) 1995 में भारत आ चुकी हैं, बड़ी लेखिका हैं। उन्हें सुनने का सौभाग्य भी हमें मिला है, मिलने का भी। अपने 'उत्साह' में मैंने उनके हस्ताक्षर 'इंटरव्यूज विथ लैटिन अमेरिकन राइटर्स' पुस्तक में उनके इंटरव्यू के साथ दिए गए उनके चित्र के नीचे उनसे करवाए थे। इंटरव्यूज की यह पुस्तक Marie-Lise Gazarian Gautier ने तैयार की है। यह 1989 में पहली बार प्रकाशित हुई थी। प्रकाशक है : ''डाल्के आर्काइब प्रेस। बहरहाल इस पुस्तक में उनसे साक्षात्कारकर्ता ने पूछा था : आपके बहुतेरे चरित्र अपनी पहचान, अपनी अस्मिता ढूंढते हुए चरित्र हैं! ''जवाब में लेखिका ने कहा था ''अर्जेंटीनी अपनी पहचान ढूंढते हुए लोग हैं, जो एक प्रकार से हमारे 'चार्म' (सम्मोहन) का परिचायक है।'' क्योंकि हम आधे यूरोपीय भी हैं...। मालूम नहीं हम 'वर्तमान' में विश्वास करते भी हैं या नहीं। साथ ही हम बहुत लिट्रेरी-साहित्यिक लोग भी हैं! ''उनका यह वक्तव्य इस पुस्तक, और उनकी कहानी 'टैंगो' की नायिका सांद्रा के संबंध में भी प्रासंगिक है। सांद्रा भी अपनी 'पहचान' ढूंढ रही है। 'ग्यारह लातिन अमेरिकी कहानियां' भी हमें लातिन अमेरिकी कथा-संसार से, उसकी परंपरा से परिचित कराना चाह रही है। निश्चय ही यह एक बड़ा काम है, जो अकेले इस छोटी-सी पुस्तक के माध्यम से संभव नहीं है। शायद यही, या 'यह भी', सोचकर संपादक ने शुरू में 'लातिन अमेरिकी आख्यान का विकास' शीर्षक से एक लंबा शोधपरक लेख भी दिया है, जो बहुत काम का तो है, पर, जिसकी भाषा वैसी नहीं बन पाई जैसी कि कहानियों के अनुवादों की है : सहज, प्रांजल प्रवाही। पुस्तक की कहानियों के अनुवादकों और लेखकों के नाम यहां दे देना अच्छा रहेगा, सो प्रस्तुत है यह सूची :

1. लुइसा वालेंसुएला : अर्जेंटीना : कहानी 'टैंगो' : अनुवाद : अलका जसपाल।
2. कार्लोस सालामार एरेरा (1906-1980) : कोस्तारिका : बोपाराका सांप : अनुवाद : रामा पॉल।
3. गपोड़ी : ओनेलियो खोर्से कार्दोसो : क्यूबा : 'गपोड़ी' : अनुवाद : अलका जसपाल।
4. रेने देल रिस्को बेरमुदेज (1937-1972) दोमिनिका गणराज्य : अब जो मैं लौट आया तोन : अनुवाद : रामा

पॉल।

5. आब्दोन उबीदिया (1944) : एकवादोर : 'करुणा' : अनुवाद : राजीव सक्सेना।

6. खुआन विल्योरो (1956) मेक्सिको 'गया-गुजरा फोटोग्राफर', अनुवाद : अलका जसपाल।

7. कार्लोस फ्रांसिस्को चांगमारीन (1922) : पनामा : 'मुहब्बत की धुन और जमाना' : अनुवाद : अलका जसपाल।

8. खेनारो विसेंते पापालार्दो : (1952) : पाराग्वाइ : 'लिफ्ट चालक' : अनुवाद : रामा पॉल।

9. मानुएल रिकार्दो पाल्मा सोरिआनो (1833-1919) : पेरू : 'इंका की अचिराना नहर' : अनुवाद : राजीव सक्सेना।

10. मारीयो बेनेदेत्ती (1920-2009) : उरुग्वे : 'बजट प्रस्ताव' : अनुवाद : रामा पॉल

11. लुईस ब्रित्तो गार्सिया (1940) : वेनेजुएला : 'खामोशी' अनुवाद : अलका जसपाल।

इन कहानियों से परिचित कराकर निश्चय ही जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के 'स्पेनिश एंड लैटिन अमेरिकन स्टडीज सेंटर' में प्रोफेसर राजीव सक्सेना ने एक बहुत अच्छा काम किया है। इनमें कुछ ऐसे देशों की कहानियां हैं, जहां से मूल स्पानी से हिंदी में किए हुए अनुवाद कम ही देखने में आए हैं। यह एक संयोग भी हो सकता है, और चयन भी, कि प्रायः सभी कहानियां 'पहचान' की या पहचान के संकट की हैं। सचमुच। मसलन 'लिफ्ट चालक' एक ऐसे संपन्न व्यक्ति की कथा है, जो अपनी इच्छा से, समय गुजारने के लिए, शौकिया रूप से लिफ्ट चालक का काम स्वीकार करता है, और चूंकि वह लिफ्ट में चढ़ने वाले कई व्यक्तियों के कामकाज से परिचित है, इसलिए उनसे बतियाता भी रहता है...पर, वे तो उसे बस लिफ्ट चालक ही मानते हैं। आगे क्या घटित होता है, यह कहानी पढ़कर ही जाना जा सकता है। यह कुल कथा-प्रसंग अत्यंत दिलचस्प है। इसी प्रकार 'गया गुजरा फोटोग्राफर' कहानी, उन

'ग्यारह लातिन अमेरिकी कहानियां' भी हमें लातिन अमेरिकी कथा-संसार से, उसकी परंपरा से परिचित कराना चाह रही है। निश्चय ही यह एक बड़ा काम है, जो अकेले इस छोटी-सी पुस्तक के माध्यम से संभव नहीं है। शायद यही, या 'यह भी', सोचकर संपादक ने शुरू में 'लातिन अमेरिकी आख्यान का विकास' शीर्षक से एक लंबा शोधपरक लेख भी दिया है, जो बहुत काम का तो है, पर, जिसकी भाषा वैसी नहीं बन पाई जैसी कि कहानियों के अनुवादों की है : सहज, प्रांजल और प्रवाही।

पिता-संतानों की कथा है, जो एक-दूसरे के लिए मानों 'अजनबी' बने रहते हैं। पर, एक दिन कुछ पुरानी धुंधली तस्वीरें मिलती हैं, जिनमें पिता द्वारा अपनाई गई 'अजनबियत' कुछ नए ढंग से खुलती है। गहरी, मर्मस्पर्शी कहानी है यह। 'करुणा' नए प्रकार की, कई स्तरों पर चलने वाली मर्मस्पर्शी कहानी है।

कुछ अपूर्व प्रेम कथाएं भी हैं इनमें। पिछले तीन-चार दशकों में हिंदी में मूल स्पानी से बहुत कुछ हिंदी में आया है। कविताओं की दुनिया से भी। 'यह संपन्नता बिखरी हुई' (लातिन अमेरिकी और कैरेबियाई कविताएं : मूल स्पानी सहित) : चयनकर्ता : श्याम प्रसाद गांगुली, मीनाक्षी सुंद्रियाल, कुंदन कानन-यह पुस्तक भी साहित्य अकादेमी से ही प्रकाशित हुई है और संजोने लायक है। फिर 'रूको, ओ पृथ्वी' मूल स्पानी से प्रभाति नौटियाल के हिंदी अनुवादों में पाब्लो नेरूदा की कविताओं का संग्रह है-'फिर', साहित्य अकादेमी से ही।

अब गाब्रियल गार्सिया मारकेज, कामिलो खोसे सेला, मारियो वरगास लोसा, भी कुछ तो अंग्रेजी और मूल स्पानी से हिंदी में उपलब्ध हैं। कवियों में लोर्का आक्तोविओ पॉज, निकोनार पार्रा आदि भी सुलभ हैं। इस दिशा में स्वयं कुछ कवि - कुंवर नारायण, विष्णु खरे, गिरधर राठी, मंगलेश डबराल, सुरेश सलिल आदि सक्रिय रहे हैं-स्वयं अनुवाद करने-कराने में। और बहुत-सा काव्य-साहित्य हिंदी में आ सका है। कहानियां, उपन्यास भी आए हैं, पर, और अधिक आने चाहिए। इस लिहाज से लातिन अमेरिका की इन ग्यारह कहानियों की पुस्तक यह आशा बंधाती है कि और भी बहुत कुछ किया जा सकता है।

बिना इस बात के उल्लेख के यह समीक्षा अधूरी रहेगी कि यह संग्रह उन कुछ कथा-विधियों की ओर भी संकेत करता है, जो एक नई तरह से कथा कहने की संभावना तलाशती हुई विधियां भी हैं। कहानियों का मूल स्वर यहां सहजता, सरलता, सरसता का ही है, पर, कुल बुनावट ऐसी कि एक 'यथार्थ', मानों एक साथ ही कई 'यथार्थ' उद्घाटित कर रहा होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि आधुनिक काल की बहुतेरी आधुनिक कहानियों की तरह इनका भी सार-संक्षेप जरा कठिन ही है। इसीलिए वैसा कुछ प्रस्तुत करने की चेष्टा मैंने नहीं की है। इन्हें पूरा पढ़कर ही इनका आनंद उठाया जा सकता है और कहानियों का कुल मर्म ग्रहण किया जा सकता है। संपादक ने लेखकों का अलग से जो बहुत अच्छा और किंचित विस्तृत परिचय दिया है, वह बहुत काम का है। हर लेखक के कामकाज, उसकी पृष्ठभूमि और उसके रुझानों से भी हम परिचित हो पाते हैं। ■

विमर्श से आगे

■ इंदिरा दांगी
कथाकार

संपर्क : खेड़ापति हनुमान मंदिर, लाऊखेड़ी, एयरपोर्ट रोड, भोपाल-462030 (म.प्र.)

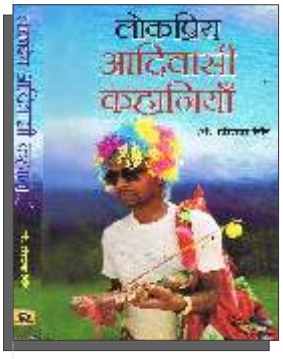

पुस्तक : लोकप्रिय आदिवासी कहानियां
संपादक : वंदना टेटे
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठ : 248
मूल्य : रु. 400

साहित्य में वर्ग-संघर्ष का स्थान अस्मिता-विमर्श ने ले लिया है; और आदिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल के बरअक्स यह विमर्श-काल है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श : विमर्शों की राहें साहित्य के राजपथ के समानांतर नई तो नहीं हैं; लेकिन नई रोशनी में जरूर हैं।

वंदना टेटे के संपादन में प्रकाशित 'लोकप्रिय आदिवासी कहानियां' आदिवासी-विमर्श की एक महत्वपूर्ण किताब है क्योंकि अव्वल तो इसमें आदिवासी कथाकारों की प्रतिनिधि कहानियां हैं। सिर्फ यही बात भी इस किताब को महत्वपूर्ण सिद्ध करने को काफी है; क्योंकि 'सहानुभूति' से आगे बढ़कर 'स्व-अनुभूति' का साहित्य है। दूसरी बात, किताब में आदिवासी कथाकारों की तीन पीढ़ियों के प्रतिनिधित्व को सम्मिलित किया गया है। आदिवासी कहानी के मुकाबिल आदिवासी-कविता तो फिर भी अधिक घुली-मिली है साहित्य की मुख्य धारा में, बिलकुल वैसे जैसे दूध में घुली शक्कर। साहित्य की मुख्य धारा में एक स्वाद की तरह आदिवासी-कविता इतनी आत्मीयता से स्वीकार्य है कि मेन स्ट्रीम की पत्रिकाओं में आदिवासी विमर्श की कविता उसी तरह प्रकाशित होती है जैसे स्त्री-विमर्श की रचनाएं लेकिन फिर भी आदिवासी कविताओं के समकक्ष कथा साहित्य अलबत्ता अधिक-अधिक आकर्षित करता है क्योंकि कहानी कविता के मुकाबले कहीं अधिक जमीनी तौर पर अपनी बात कहती है; फिर ऐसी कहानियों में व्यक्त जीवन और जीवन-मूल्यों में गजब का अनोखापन तो है ही; दूसरे यह काल कथाकाल है।

इस संग्रह में (जिसका नाम पहले शायद 'आदिवासी कथा जंगल' रखा जाना तय था) पहली पीढ़ी के कथाकारों में सबसे पहला नाम सुश्री एलिस एक्का का है। अब तक की उपलब्ध जानकारी के अनुसार एलिस एक्का हिंदी की पहली आदिवासी (स्त्री) कथाकार हैं। उनका स्थान आदिवासी कथा साहित्य में वही ठहरता है जो तिब्बत के अंग्रेजी साहित्य में कुंजुम चोडेन का है -पहली फिक्शन लेखिका!

उपलब्ध संग्रह में संकलित एलिस एक्का की कहानी है - दुर्गी के बच्चे और एल्मा की कल्पनाएं। पहली ही कहानी से किताब की टोन समझ में आने लगती है कि किताब कोई नारा नहीं दे रही है बल्कि इसके रचनाकार अपने 'जिये हुए' या कि कहिए 'भोगे हुए' यथार्थ को ऐसी सहजता से कहानी में रचते हैं जैसे कोई हमारे सामने बैठकर 'कुछ जगबीती कुछ आपबीती' सुना रहा हो। प्रस्तुत कहानी की नायिका दुर्गी जमादारिन का काम करने को विवश है क्योंकि चार बार विवाह करने के बाद भी वह एकाकी-अनाथ विधवा है और चार पतियों से उसके अनेक बच्चे हैं। बच्चों के भरण-पोषण के लिए वो बाल्टी और झाड़ू लेकर घर-घर पाखाने साफ करने का काम करती है फिर भी वह इतना नहीं कमा पा रही है कि अपने बच्चों को ठीक परवरिश दे पाए। कहानी इतनी सादगी और 'लो टोन' में अपनी बात हमसे कहकर निकल जाती है कि लगता है जैसे हमारे सामने घटित हो रहा हो और कहना दरअसल सोचने जितना अंदरूनी है।

कहानी 'खरगोशों का कष्ट' के लेखक हैं पद्मश्री डॉ. रामदयाल मुंडा, जिनकी एक अंतरराष्ट्रीय पहचान है। प्रस्तुत कहानी किसी दंत कथा या मिथक कथा-सी जान पड़ती है। मिथक में अपनी बात कहती, गजब के किस्सागोई शिल्प में रची गई है। कहानी एक जंगल के मूल निवासी खरगोशों के दुख-दर्द और शोषित जीवन की कहानी है जो कि सिंहों के आतंक से खत्म होने की कगार पर हैं। सभा में कुछ खरगोश जंगल छोड़कर भाग जाने की बात कहते हैं तो कुछ सिंहों की हत्या कर देने की। अंततः तय यह होता है कि एक खरगोश को साल भर तक खिला-पिलाकर इतना बड़ा और ऊंचा बनाया जाए कि वह शेर की खाल पहनकर उनके बीच जा सके। अपने हिस्से का भी भोजन देकर सभी खरगोश उस एक खरगोश को खिला-पिलाकर अपना योग्य नेता बनाते हैं फिर एक मृत सिंह की खाल पहनाकर सिंहों के बीच भेजते हैं। नेता खरगोश सिंहों के इलाके में सफलतापूर्वक रहकर लौट आता है। ये बात सिंहों को ज्ञात हो जाती है। अब खरगोशों का नेता अपने समाज के लोगों के प्रतिनिधि के तौर पर सिंह राजा के पास जाता है और अलग राज्य की मांग करता है। सिंह राजा उसे सिंहों-से जीवन और उसकी संतानों को सत्ता के मुनाफेदार काम देने का प्रलोभन देता है। जब खरगोशों

का नेता लौटकर आता है तो ज्यादातर खरगोश जनता उसकी बात समझ नहीं पाती क्योंकि वह सिंहों की भाषा बोलने लगा था। इस कहानी को पढ़ते समय मुझे उपन्यास 'द एनिमल फार्म' की याद आती रही। आदिवासियों के उनके ही 'जल, जंगल, जमीन' से निष्कासन और उनके नेताओं का सत्तालोलुप चरित्र जिस मार्मिकता से कहानी बयान करती है, वह उल्लेखनीय है।

कहानी 'संगी' के लेखक वाल्टर भेंगरा 'तरुण' क्योंकि आधुनिक शहरी जीवन में न सिर्फ शामिल हैं बल्कि सफल भी हैं और यही आधुनिकताबोध उनके साहित्य में भी परिलक्षित होता है। कहानी 'संगी' एक प्रेम कहानी है। एकदम फिल्मी तरीके से फौजी नायक फागू मुंडा नायिका दुलारी को गाँव के मेले में छेड़खानी करने वाले गुंडों से बचाता है और उसके साथ कच्चे रास्ते पर चलते हुए उसे उसके गांव तक छोड़कर आता है। नायिका शहरी और ग्रेजुएट है। नायक-नायिका फिर मिलते हैं जब नायिका ट्रेन में उन भोले-अशिक्षित आदिवासियों को जाने से रोक रही है जिन्हें दो ठेकेदार अवैध तरीके से ले जा रहे हैं, बरगला कर। नायक नायिका का साथ देता है और पुलिस की मदद से उन मजदूरों को रोक लिया जाता है। कहानी का अंत नायिका की उस चिट्ठी से होता है जिसमें नायक को 'संगी' कहकर संबोधित किया है। कहानी वैचारिक तौर पर बहुत प्रबल है लेकिन मार्मिकता नहीं महसूस होती कहानी में और कहीं ये भी लगता है कि सिर्फ लिखने के लिए लिखी गई कहानी है जिसमें कहानी के टूल्स तो सभी इस्तेमाल किए गए और इस तौर पर कहानी सफल भी है फिर भी कहानी की प्रशंसा साहित्य के तौर पर नहीं की जा सकती क्योंकि वो हमें स्पर्श नहीं करती है, सूचना भर देती-सी जान पड़ती है। मंगल सिंह मुंडा की कहानी 'धोखा' ईंट भट्टों पर आदिवासी मजदूरों के शोषण और खासकर आदिवासी लड़कियों के भावनात्मक और शारीरिक शोषण की कहानी है जो वास्तविक जीवन का भी एक मार्मिक सत्य है। कहानी का अंत आते-आते पाठक को भी मासूम नायिका मुंगली से सहानुभूति हो जाती है जो मजदूरी करती रही, अपना दैहिक शोषण भी करवाती रही और फिर भी उसके पास घर लौटने तक के पैसे नहीं हैं।

इस संग्रह में संकलित एलिस एक्का की कहानी है - दुर्गी के बच्चे और एल्मा की कल्पनाएं। पहली ही कहानी से किताब की टोन समझ में आने लगती है कि किताब कोई नारा नहीं दे रही है बल्कि इसके रचनाकार अपने 'जिये हुए' या कि कहिए 'भोगे हुए' यथार्थ को ऐसी सहजता से कहानी में रचते हैं जैसे कोई हमारे सामने बैठकर 'कुछ जगबीती कुछ आपबीती' सुना रहा हो। प्रस्तुत कहानी की नायिका दुर्गी जमादारिन का काम करने को विवश है क्योंकि चार बार विवाह करने के बाद भी वह एकाकी-अनाथ विधवा है और चार पतियों से उसके अनेक बच्चे हैं। बच्चों के भरण-पोषण के लिए वो बाल्टी और झाड़ू लेकर घर-घर पाखाने साफ करने का काम करती है फिर भी वह इतना नहीं कमा पा रही है कि अपने बच्चों को ठीक परवरिश दे पाए। कहानी इतनी सादगी और 'लो टोन' में अपनी बात हमसे कहकर निकल जाती है कि लगता है जैसे हमारे सामने घटित हो रहा हो और कहना दरअसल सोचने जितना अंदरूनी है।

कहानी 'बेरथा का ब्याह' के लेखक प्यारा केरकेट्टा खड़िया भाषा में आधुनिक कहानी लिखनेवाले प्रथम लेखक हैं और ये कहानी भी रोज केरकेट्टा द्वारा अनुदित है हिंदी में। कहानी बेरथा नाम की लड़की की है जो अपने पति की मृत्यु के बाद अपने ससुराल और मायके पक्ष के बुरे बर्ताव के बाद अपने प्रेमी के साथ असम भाग जाती है। छोटी-सी कहानी जहां अपने रचाव में अपने लोकेल की सुगंध से महकती है वहीं नायिका अपने समय और समाज की कुरीतियों से लड़ती भी दिखाई देती है। यही बात इस कहानी को बड़ा बनाती है। अगली कहानी 'एक बित्ता जमीन' की नायिका अनाथ सरला से उसकी जमीन हड़पने के लिए गोतिया लोग उसे डायन कहकर मारते-पीटते हैं और अंत में उसकी जान बचाने वाला डॉक्टर उससे विवाह करने की हामी भरता है दरोगा के सामने। कहानी कुछ और गहराई की और स्पष्टता की मांग करती है। यदि अठारह साल से सरला अपने लिए जीवनसाथी नहीं तलाश पाई तो अचानक से डॉ. सीमाल बाबू अपने पुराने प्रेम का दावा कैसे करते हैं दरोगा के सामने वह भी सरला की ओर से! बहरहाल, कहानी बुरी नहीं है लेकिन और बेहतर ट्रीटमेंट की दरकार रखती है। नारायण की कहानी 'प्रवाचक का जन्म' आदिवासियों के जीवन के उस पहलू पर रोशनी डालती है जिसमें वे अपनी गरीबी, भुखमरी और अशिक्षा से तंग आकर ईसाई बन जाते हैं। बेहतर जीवन का लोभ किस तरह मासूम लोगों का मजहब बदल देता है, यही कहानी है।

येसे दरजे थोंगशी अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी साहित्यकार हैं। उनकी कहानी 'आईना' पहाड़ी क्षेत्र के एक ऐसे दूरदराज गांव की कहानी है जिसके निवासियों का आधुनिक सभ्यता से दूर-दूर तक कोई नाता नहीं। गांव में प्राइमरी स्कूल खुलता है और ग्रामीणों के आकर्षण का मुख्य केंद्र है मास्टर जी का वो आईना जिसे उन्होंने अपने जीवन में पहली बार देखा है। कभी खूबसूरत रही एक लड़की जिसे उसके एक असफल प्रेमी ने कुरूप बना दिया था; वो भी मास्टर जी के यहां आईने में अपना प्रतिबिंब देखने आती है। और वो जो अब तक बिना खुद को देखे किसी तरह जीवन काट रही थी, अपनी कुरूपता को साफ-साफ देखने के बाद आत्महत्या कर लेती है। लक्ष्मण

गायकवाड़ की कहानी 'बंदूक्या' क्रिमिनल ट्राइब्स कहे जाने वाले मासूम आदिवासियों का दुख-दर्द बयान करती है; वे लोकजीवन की मुख्यधारा में शामिल नहीं किए जाते और हर तरह से शोषित होते हैं। कहानी मार्मिक बन पड़ी है। रोज केरकेट्टा की 'फिक्सड डिपोजिट' एक लंबी कहानी है। बांध बनने के कारण और मुआवजे के वितरण में बेईमानी के कारण एक खुशहाल किसान परिवार कैसे बर्बाद हो जाता है, इसको लेखक ने कलात्मक धैर्य के साथ रचा है। अगली कहानी है पीटर पौल एक्का लिखित 'वे चार वर्ष'। एक मेहनती, पढ़ाकू लड़के की कहानी है जो मुश्किल से मुश्किल हालात और भुखमरी का सामना करके भी अपनी पढ़ाई करता रहता है। आर्थिक तंगी से निबटने के लिए वो एक प्रेस में नौकरी भी करने लगता है। यहां तक तो कहानी सशक्त है लेकिन अंत लचर है। वो लड़का जो हर तरह की चुनौती का सामना करके भी पढ़ाई करने से पीछे नहीं हटा, वो एक बेईमान प्रकाशक मालिक के तनिक डांट देने पर गांव वापिस भाग जाता है जबकि उसने टॉप किया है! 'मूसल' कहानी की लेखिका हैं फ्रांसस्का कुजूर। कहानी एक रिटायर्ड फौजी के अपनी पत्नी के साथ अपने गांव लौट जाने की है जहां उनके पहुंचते ही बंटवारा हो जाता है परिवार में। फौजी गांव के बदमाश लड़कों को सुधारना चाहता है और इस फेर में कई नाटकीय घटनाएं होती हैं। कहानी में रवानगी है और किस्सागोई भी बेहतर है। ज्योति लकड़ा की कहानी 'कोराईन डूबा' एक पहचानी हुई कहानी है। संभवतः यह कहानी 'परिकथा' में प्रकाशित हुई थी (या शायद किसी अन्य पत्रिका में रही हो), परिकथा संपादक ने इस कहानी की बहुत प्रशंसा की थी मुझसे। कहानी लोककथा का लुत्फ देती है; लेकिन फिर भी मैं यही कहूंगी कि अपनी अनूठी किस्सागोई के बावजूद कहानी में सरल प्रवाह नहीं महसूस होता, शायद इसलिए कि इसमें आंचलिक शब्दों का इतना अधिक प्रयोग है कि पाठक अटकता बहुत है कहानी में। सिकरा दास तिर्की की कहानी 'चिड़ियां लटकाना', रूपलाल बेदिया की 'अमावस की रात में भगजोगिनी', कृष्ण मोहन सिंह मुंडा की 'लीलमनी की ड्यूटी', राजेंद्र मुंडा की 'मोहरी', जनार्दन गोंड की 'भंडुआ', सुंदर मनोज हेम्ब्रम की 'रातवाली बंगाल की आखिरी बस', तेमसुला आओ की 'सोअबा', गंगा सहाय मीणा की 'पूस की रात', शिशिर टूडू की 'दाग' इस कथा-संग्रह की अन्य कहानियां हैं।

कथा-संग्रह की कहानियों को 'कला कला के लिए' की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। ये कहानियां लोकजीवन को साहित्य में तब्दील करती कहानियां हैं। आशा है कि आदिवासी कथा-साहित्य मेन स्ट्रीम के राजपथ के अगल-बगल की रोशन पगडंडियों पर चलने के बजाय, राजपथ पर चलने वालों का ही एक हिस्सा होगा। आदिवासी विमर्श के साहित्यकारों को एक बात सदैव ध्यान में रखनी होगी कि कोई भी विमर्श किसी साहित्य को कालजयी नहीं बनाता। साहित्य को कालजयी बनाती है खुद उसकी रचनात्मकता। संस्कृत आचार्यों ने कहा है; लेखक बनता है तीन चीजों से -प्रतिभा, अध्ययन, अभ्यास! ...और यह परिभाषा हर साहित्य पर लागू होती है-हर विमर्श पर भी! ■

आरंभ में ऐसी छपती थीं हिंदी की किताबें

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय में संरक्षित दुर्लभ पुस्तकें

हिंदी वाचिकता का रचाव

बुद्धिनाथ मिश्र
कवि

संपर्क : देवधा हाउस
5 /2, वसंत विहार एन्क्लेव,
देहरादून-248006 (उत्तराखंड)

पुस्तक : और अन्य कविताएं
कवि : विष्णु खरे
प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठ : 116
मूल्य : रु. 300

विष्णु खरे अपने समकालीन कवियों में संभवतः सबसे गंभीर और सूक्ष्मदर्शी कवि हैं। उनकी हर कविता सिर्फ एक बयान या नागार्जुन की तरह अपनी नजरों के सामने घटती घटनाओं पर महज एक टिप्पणी न होकर एक प्रोजेक्ट होती है। वे राह चलते भी जिस वस्तु या व्यक्ति या घटना पर कविता करते हैं, उसपर रुककर पूरी तहकीकात करते हैं, उसकी परतें उघारते हैं; तभी कलम उठाते हैं। यह उनकी अपनी विशेषता है, जिसे उन्होंने शायद विश्व-कवियों के निरंतर सायुज्य से अर्जित किया है। यह वैशिष्ट्य उन्हें महाकवियों की श्रेणी में ले जाकर बैठा देता है; क्योंकि महाकवि भी जब कोई प्रबंध-काव्य लिखता है, तो पात्र से लेकर उसके पूरे परिवेश का सम्यक निरीक्षण-परीक्षण करता है। विष्णु जी प्रवृत्ति से चिंतक और पेशे से पत्रकार भी रहे हैं। इन दोनों पहलुओं का सम्मिश्रण उनकी कविताओं में मिलता है। यह गुण उनके अधिकांश समानधर्मा कवियों में नहीं है, जिसके कारण वे कविता में सपाटबयानी के दोषी हो जाते हैं।

सन् 1940 में छिंदवाड़ा के प्राकृतिक परिवेश में जन्मे और क्रिश्चियन कॉलेज, इंदौर से अंग्रेजी साहित्य में स्नातकोत्तर डिग्री हासिल करनेवाले विष्णु जी मध्य प्रदेश और दिल्ली के महाविद्यालयों में प्राध्यापक बनने से पहले इंदौर में ही कुछ दिनों तक एक दैनिक पत्र में उपसंपादक रहे। अंग्रेजी साहित्य के छात्र के रूप में ही उन्होंने बीस वर्ष की उम्र में टी एस इलियट के 'वेस्ट लैंड' का 'मरू प्रदेश' नाम से अनुवाद किया था। यह क्रम आगे भी जारी रहा, जिसके कारण वे दुनिया के तमाम कवियों की कविताओं का चयन कर उनका हिंदी में अनुवाद किया और इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय फलक पर प्रतिष्ठित कवियों की एक विशाल आकाशगंगा हिंदी के बड़भागी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की। उन्होंने जर्मन नाटककार गेटे के प्रसिद्ध ट्रेजडी नाटक 'फॉस्ट' के अलावा, फिनलैंड के राष्ट्रीय महाकाव्य 'कलेवाला' (एलियस लॉनरोट) और छोटे-से यूरोपीय देश एस्टोनिया के राष्ट्रीय महाकाव्य 'केलविपोइग' (फ्रेडरिक रेनहोल्ड क्रेव) का भी अनुवाद किया।

दिल्ली के महाविद्यालय से अध्यापन छोड़कर, अपने विश्व-साहित्य ज्ञान की बदौलत, विष्णुजी 1976 से 1984 तक केंद्रीय साहित्य अकादेमी के उपसचिव भी रहे और 1985 से लंबे अरसे तक नवभारत टाइम्स के संपादन से भी जुड़े रहे। इन सबके साथ वे कवि, अनुवादक, समीक्षक और पत्रकार के रूप में सुप्रतिष्ठित होते गए। इसके अलावा वे शीर्षस्थ फिल्म-समीक्षक और पटकथा-लेखक भी रहे हैं, जिस रूप में वे कान, ला रोशेल और रोटरडम के अंतरराष्ट्रीय सिने-समारोहों में आमंत्रित किए गए थे। उन्होंने कुल मिलाकर 40 से अधिक बार साहित्यिक-शैक्षणिक विदेश यात्राएं की हैं।

एक कवि के रूप में विष्णुजी की पहली कविता मुक्तिबोध-संपादित साप्ताहिक 'सारथी' में 1956-57 में छपी थी। पहला काव्य संग्रह 'एक गैर रूमानी समय में' था, जिसकी बीस कविताएं अशोक वाजपेयी द्वारा संपादित 'पहचान' शृंखला में 'विष्णु खरे की बीस कविताएं' शीर्षक से 1970 में प्रकाशित हुई थीं। उसके आठ साल बाद 1978 में उनका पहला स्वतंत्र काव्य संग्रह 'खुद अपनी आँख से' छपा, जिसे छंदमुक्त कविता के वरिष्ठ कवि रघुवीर सहाय ने 'अद्वितीय संकलन' माना था। 1983 में उनकी समीक्षा-पुस्तक 'आलोचना की पहली किताब' छपी, जिसने उनकी विरल काव्यदृष्टि को हिंदी-जगत के समक्ष रखा। अबतक उनकी लगभग 40 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें 'पाठांतर', 'कवि ने कहा', 'पिछला बाकी', 'काल और अवधि के दरमियान', 'लालटेन जलाना', 'खुद अपनी आँख से', 'सबकी आवाज के परदे में' तथा 'और अन्य कविताएं' उल्लेखनीय हैं।

राधाकृष्ण प्रकाशन से प्रकाशित उनका नवीनतम काव्य-संग्रह 'और अन्य कविताएं' दो विभूतियों को समर्पित हैं। पहली विभूति पिता सुंदर मुरलीधर खरे हैं, जिनका यह शताब्दी वर्ष है। दूसरी विभूति हैं मुक्तिबोध, जिनको उन्होंने 'सृजन-पिता' के रूप में स्मरण किया है। अतीत के साथ-साथ वर्तमान और भविष्य को कैसे संभाला और संवारा जाए, यह साहित्यकारों को विष्णुजी से सीखना चाहिए।

'और अन्य कविताएं' में विष्णु खरे की कुल 46 कविताएँ हैं जो अपने शिल्प और कथ्य के साथ-साथ अपनी भाषा से पाठक को विमोहित करती हैं। दरअसल इन कविताओं की आत्मा हिंदी काव्य की वाचिक परंपरा

में रची-बसी है, जो लगभग वही प्रभाव अपने श्रोताओं पर छोड़ती है, जैसे कोई मार्मिक लोकगीत हो। बशर्ते, इन्हें बांग्ला के आवृत्तिकार की भांति कोई कलात्मक ढंग से पाठ कर सके। जैसे कोई अच्छा गीत देर तक श्रोता को बेसुध बनाए रखता है, वैसे ही ये कविताएं केवल अपने शब्द और अर्थ के बल पर पाठक को देर तक बबूल के कांटे की चुभन का एहसास कराती रहती हैं। पहली कविता 'विलोम' किसी मृत व्यक्ति की शोकसभा में रखे गए दो मिनट के मौन पर है। कवि 'मंच पर खड़े खुर्राट पेशेवर शोकार्तों' पर नजर डालता है-'वे कनखियों से देखते हैं कलाई या दीवाल घड़ियों को या आसपास खड़े अपने जैसे लोगों को' और सारे जमाने पर खिलखिलाने की उसकी इच्छा होती है, जिसे वह 'अपने निजी जीवन की चुनिंदा त्रासदियों को सायास याद करके ही' दबा पाता है। वह एक सेकेंड का भी मौन नहीं, बल्कि चाहता है कि 'चुप्पी के सारे विलोम रखें और वह भी महज दो मिनट के लिए'। 'अबेंडंड' कविता रेलवे स्टेशनों के आसपास परित्यक्त इमारतों के भीतर जाकर तहकीकात करती है। उनमें जो भी सहूलियतें रही होंगी, वे निकाल ली गई होती हैं, जो नहीं निकल पातीं, मसलन कमोड, उन्हें तोड़ दिया जाता है। कवि को दीवारों पर 'सरे वायरों, स्विचों, प्लगों, होल्डरों, मीटरों के सिर्फ चिह्न दिखते हैं', रसोई घर में 'दीवार पर धुएँ का एक मिटाता निशान बचा हुआ' दीखता है और वह सोचता है कि 'यह सारा सामान अपनी नीलामी का इंतजार कर रहा होगा।' वह इससे आगे बढ़कर चिंता करता है-

लेकिन वे लोग कहां हैं जो इन सब छोड़े गए ढांचों में तैनात थे
या इनमें पूरी गिरस्ती बसाकर रहे।
कितनी यादें तजनी पडी होंगी उन्हें यहां
क्या खुद उन्हें भी आखिर में तज ही दिया गया।

इस आखिरी सवाल से वह ज्यादा उद्विग्न है। उसकी चिंता यहीं तक नहीं सिमटती। यहां से वह उठाता एक दैत्याकार सवाल-'क्या कोई लिख सकता है/तज दिए गए/नदियों, वनों, पर्वतों, गांवों, कस्बों, शहरों, महानगरों... संभव हो तो सारे देश पर, सारे मानव मूल्यों पर।'

एक कवि के रूप में विष्णुजी की पहली कविता मुक्तिबोध-संपादित साप्ताहिक 'सारथी' में 1956-57 में छपी थी। पहला काव्य संग्रह 'एक गैर रूमानी समय में' था, जिसकी बीस कविताएं अशोक वाजपेयी द्वारा संपादित 'पहचान' शृंखला में 'विष्णु खरे की बीस कविताएं' शीर्षक से 1970 में प्रकाशित हुई थीं। उसके आठ साल बाद 1978 में उनका पहला स्वतंत्र काव्य संग्रह 'खुद अपनी आँख से' छपा, जिसे छंदमुक्त कविता के वरिष्ठ कवि रघुवीर सहाय ने 'अद्वितीय संकलन' माना था। 1983 में उनकी समीक्षा-पुस्तक 'आलोचना की पहली किताब' छपी, जिसने उनकी विरल काव्य-दृष्टि को हिंदी-जगत के समक्ष रखा। अब तक उनकी लगभग 40 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें 'पाठांतर', 'कवि ने कहा', 'पिछला बाकी', 'काल और अवधि के दरमियान', 'लालटेन जलाना', 'खुद अपनी आँख से', 'सबकी आवाज के परदे में' तथा 'और अन्य कविताएं' उल्लेखनीय हैं।

'प्रत्यागमन' एक कवि कल्पना है, एक फंतासी है महाभारत के जीवितों की दिवंगतों से भेंट की। युद्ध के सोलह वर्ष बाद की, जिसमें भागीरथी में रात्रि के प्रथम प्रहर/कटी तक खड़े हुए व्यास द्वारा आहूत 'भीष्म, द्रोण विराट द्रुपद, अभिमन्यु, कर्ण, दुर्योधन... कौरवों की ग्यारह, पांडवों की सात अक्षौहिणियां'। सभी वैसे ही दीप्त, जैसे वे कुरुक्षेत्र में वीरगति प्राप्ति से पहले थे। 'वही वेश, वही ध्वजाएं, वही वाहन...उनकी पलकें नहीं झपकती थीं, छायाएं नहीं पड़ती थी'। इसके बाद की सूक्ष्म कल्पना अद्भुत है। जो जीवित पात्र हैं महाभारत के, वे सभी मृत पात्रों से मिलते हैं कर्ण देखता रहा अपने वधिक भ्राता अर्जुन को, द्रौपदी आईं अपने उस एकमात्र ज्येष्ठ के पैर छूने जो उसका पति नहीं हो पाया था, अभिमन्यु ठिठका रहा उत्तरा के केशों में कुछ रजत तार देखता हुआ। सोलह वर्ष के अभिमन्यु के समक्ष खड़ा था सोलह वर्ष का उसका बेटा परीक्षित।

अंत में कवि की टिप्पणी है -

वे न आए थे न आना चाहते थे
मात्र इस एक रात्रि के आख्यान के लिए
उन्होंने स्वयं को दुबारा रच लेने दिया था
...वे लौटे।

'तीन पत्ते' की वाक्यावली बाणभट्ट की 'कादंबरी' के 'शुकनासोपदेश' या उपनिषद् के 'सत्यं वद /धर्मं चर' जैसे वाक्यों से मिलती है। प्रत्येक वाक्य जुआ खेलनेवाले अपने मित्र को बड़ी बारीकी से सावधान करता हुआ कवि टोकता है; 'अपनी पूरी पूंजी लेकर मत जाओ/कुछ कमरे पर छोड़ जाओ, कुछ ले जाओ... औरतों और बच्चों वाली जगह में कभी न खेलो/अपरिचित निठल्ले तमाशबीनों को साथ मत बैठने दो।' सातवीं कविता दुनिया की अज्ञात लिपियों के चिह्नों-प्रतीकों पर है-

हे वर्णमाला हे भाषा हे चित्रों हे प्रतीकों
तुम्हारी तीन हजार वर्षों की कैसी यह हठधर्मी
कि तुम लज्जित नहीं होओगे
अपने अर्थ के उद्घाटन से।

इसके बाद आता है 'सरस्वती वंदना' का क्रम, जो अपने ढंग की है, जिसमें सरस्वती से कवि कहता है कि 'तुम अब नहीं रही चमेली, चंद्रमा और हिम जैसी श्वेत/तुम्हारे वस्त्र भी मलिन कर दिए गए/जिस कमल पर तुम अबतक आसीन हो वह कब का विगलित हो चुका/तुम्हारा हंस, गिद्धों का आखेट हुआ/मयूर ने धारण किया काक का रूप।' आज की शिक्षा पद्धति पर इससे तीखा व्यंग्य

कोई कवि क्या कर सकता है? 'तुलसी मस्तक तब नवैं' की परंपरा में चलकर कवि आह्वान करता है-हंस पर नहीं शार्दूल पर आओ भवानी।

'नई रोशनी' कविता आंशिक रूप से छंदोबद्ध राजनीतिक व्यंग्य है, जिसमें 'एकमात्र राष्ट्रीय रोशनदान खानदान' की और ऊंगली उठाते हुए अंत में कवि पूछता है -

हर दफा इसी कुनबे से गरचे हैं नई रोशनी सारी
फिर भी बार-बार यह अंधकार
क्यों हो जाता है भारी

किसानों की आत्महत्या आज का बड़ा सवाल है, जिससे न कोई राजनेता मुंह मोड़ सकता है और न ही कोई संवेदनशील कवि। 'उनसे पहले' कविता में कवि ने उसी सवाल को उठाया है और गुनाहगारों की एक फेहरिस्त पेश करते हुए फरमाया है-

किसानों, मजूरों की आत्महत्या की खबरों से
मुझे भी हैरानी होती है
कि जब उन्हें खुदकुशी ही करनी है
तो वे ...में से
कम-से-कम एक असली गुनहगार को मारकर क्यों
नहीं मरते!
कि जब मौत के सिवाय कोई रास्ता ही न रहा
तो चलो किसी अन्यायी को भी
साथ लिए चलते हैं।

'सुंदरता' कविता जीवो जीवस्य भक्षणम् के जीवन-दर्शन के पीछे बरती जा रही नृशंसता को अपने फोकस में रखकर यह चिंता करती है कि चिड़िया जब तितली को खा जाती है, तब बचता क्या है-

नीचे अपनी बांबी में ले जाती हुई
लाल चींटियों से छुड़ाकर
एक बच्ची ने अलबत्ता सहेजकर
रखे अपनी किताब में
दो वह सुंदर चटख पंख जब तक बचे।

इस संग्रह की 'फासला', 'तत्र तत्र कृतमस्तकाष्ठजलि', 'दम्यत्', 'संकेत', 'और नाज किस पर करूं', 'सर्पसत्र' और 'संकेत' कविताएं अपने धारदार व्यंग्य से तिलमिला देती हैं। 'संकेत' की कुछ प्रारंभिक पंक्तियां हैं, जिनमें वैदिक प्रतीकों का विलक्षण प्रयोग किया गया है -

सूअरों के सामने उसने बिखेरा सोना
गर्दभों के आगे परोसे पुरोडाश सहित छप्पन व्यंजन
चटाया श्वानों को हविष्य का दोना
कौओं उलूकों को वह अपूप देता था
अपनी हथेली पर।

जिसने विष्णुजी की कोई कविता नहीं पढ़ी है, वह 'और अन्य कविताएं' पढ़कर के मिजाज, उनके कहन और उनके तेवर से अच्छी तरह परिचित हो सकता है। हिंदी में प्रायः रोज दो-चार दर्जन छंदमुक्त कविताओं के संकलन निकल रहे हैं। उस ढेर से इस प्रकार के काव्य-संग्रह को निकलना उसी तरह है जैसे भूसे की ढेर से पछोड़कर अनाज को निकालना। लेकिन हिंदी कविता को अकाल के दिनों में जिलानेवाला ऐसा संग्रह जिसके पास होगा, उसके घर में आले पर दिया रखने की जरूरत नहीं है। ■

इन पत्रिकाओं से आगे बढ़ी हिंदी

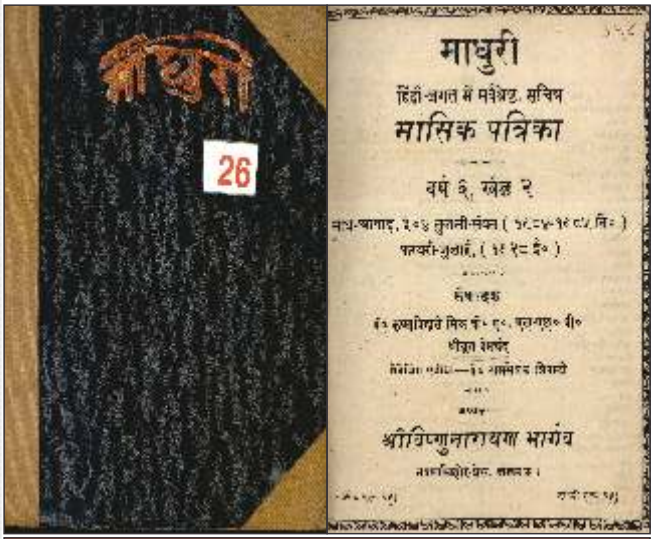

माधुरी (पं. कृष्णबिहारी मिश्र) सन् 1928

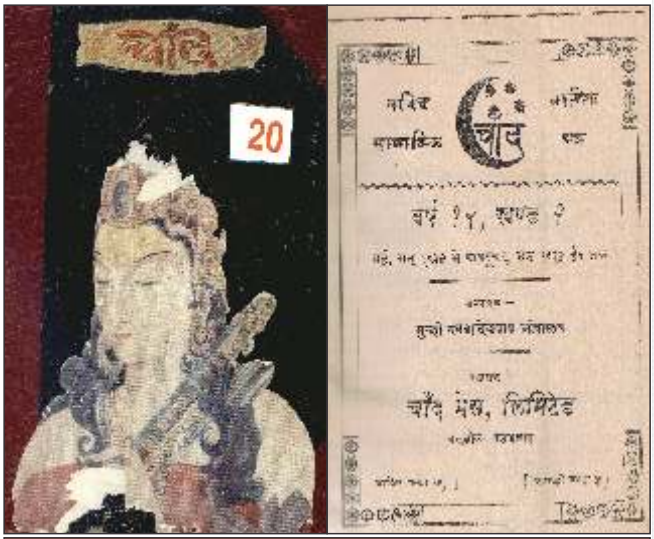

चाँद (नवजादिकलाल श्रीवास्तव) सन् 1934

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय में संरक्षित दुर्लभ पत्रिकाएं

चिंताएं देशकाल की

दामोदर खड़से
कवि एवं अनुवादक

संपर्क : बी. 503-504 हाई ब्लिस कैलाश जीवन के पास धायरी, पुणे-411041 (महाराष्ट्र)

पुस्तक : भूखंड तप रहा है
लेखक : चंद्रकांत देवताले
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठ : 44
मूल्य : रु. 125

मनुष्य और पृथ्वी का रिश्ता सृष्टि की पहचान है। पृथ्वी उदार मन से सब कुछ निरंतर केवल देती रही है। सृष्टि का निर्माण-केंद्र पृथ्वी ही है। मनुष्य सृष्टि का एक हिस्सा है। परंतु, उसके मन में अपने लिए पाते रहने की लालसा कभी कम नहीं होती। मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधा और बेशुमार गति हासिल करने के लिए तमाम अन्वेषणों-खोजों को हथियार बनाया। उसकी यह यात्रा निरंतर जारी है, परंतु उसकी इस यात्रा का घर्षण प्रकृति से हो रहा है। भौतिकता और पृथ्वी के अनवरत संघर्ष से जो चिंगारी उठ रही है, उससे यह 'भूखंड तप रहा है'। इस ताप-तपन की चिंता को कवि चंद्रकांत देवताले ने बहुत बारीकी से अपनी कविता में व्यक्त किया है। 'भूखंड तप रहा है' उनकी लंबी कविता है। रेडियो के लिए स्वतंत्र कुमार ओझा के आग्रह पर चंद्रकांत देवताले ने इसका नाट्य रूपांतरण किया है।

चंद्रकांत देवताले संवेदनशील कवि के रूप में जाने जाते रहे हैं। रचनाकार अपने प्रतीकों, बिंबों और संकेतों से अपने कथ्य को शब्दों का जामा पहनाता है। कविता या गद्य का रूपांतरण जब रेडियो के लिए किया जाता है, तब ध्वनि कान ही नहीं, आँख भी बन जाती है। इस कृति में यह बात उजागर होती है। इसमें पूरी कविता को सिलसिलेवार विभिन्न स्वरों और पात्रों में विभाजित किया गया है। कविता की आत्मा को विधा परिवर्तन के बाद भी अक्षुण्ण रखा गया है।

वातावरण का निर्माण कथ्य को प्रभावी बनाने में मदद करता है। इसमें प्रारंभ में कविता की प्रस्तुति युगल स्वर में होती है- ''गरूड़ आकाश में उड़ रहे होंगे/आकाश, पानी में घिर रहा होगा/और जंगली सूअर अपनी थूथनियों से खोद रहे होंगे/धरती के भीतर गड़ी हुई संजीवनी/समय की विराट खोखल के भीतर/वे अपनी हथेली पर थूककर/सूरज का इंतजार कर रहे, होंगे।'' फिर कोष्टक में जो संकेत ध्वनि के माध्यम से उभरता है, वह बहुत सार्थक और 'भूखंड तप रहा है' शीर्षक को न्यायोचित ठहराता है, ''पक्षियों के कलरव को चीरती जेट यान के गुजरने की ध्वनि...'' दरअसल यह सारा संघर्ष मनुष्य की आकांक्षा की उड़ान और सृष्टि के पंखों का टकराव है। विज्ञान की प्रगति, प्रकृति को आहत न करे, क्योंकि प्रकृति अपने स्वाभाविक रूप में रह सके, यही कवि की संवेदना कहती है। मनुष्य की बुद्धि अपरंपार है, उसकी स्पर्धा प्रकृति से न हो, प्रकृति की रक्षा हो। दोनों को अपनी स्वाभाविकता में रहने देना चाहिए। वह जिम्मेदारी मनुष्य की है। इसीलिए व्यंग्यात्मक स्वर उठता है- ''अब तो मस्तिष्क है कंप्यूटर के साथ भी/कविता लिख देगा कंप्यूटर एक दिन/पर क्या बसंत या चिड़िया अथवा/स्तनों से झरता झरना दूध का संभव है कभी/कंप्यूटर के गर्भ से भी...।''

इस कृति में निरंतर हमारा वर्तमान इतिहास आँखों के सामने से गुजरता दिखाई देता है। विज्ञान और आधुनिक उपकरण मनुष्य को मनुष्य के सामने खड़ाकर हथियार सौंप रहे हैं और एक नया 'महाभारत' सब कुछ विध्वंस की दिशा में धकेल रहा है। इन खौफनाक दृश्यों को शब्दबद्ध करने में चंद्रकांत देवताले यशस्वी हुए हैं। वे कहते हैं- ''मैं आ गया कहां?/ये कितनी ही चीजें/पुराने हथियार बंदूक, बल्लम, फरसें/ कैसी है यह अजीब-सी गंध, शायद इतिहास की/...'' ''उसके भीतर हिंसा और नफरत/और अश्लील दृश्यों की संपन्न परंपरा है...।'' चंद्रकांत देवताले समाज के भीतर अराजकता फैलाने और लूट मचाने वालों को बहुत स्पष्टता से देखकर अपने बयान में शामिल कर लेते हैं- ''उसने महसूस की जलते हुए नवान्न की गंध/देखी तेंदुए के प्रदीर्घ नाखूनों से जख्मी दिशाएं...।'' ''दूसरी ओर कर्फ्यू के कांच के टुकड़ों से घिरकर/बंद हो गई शहर की सड़क...।'' ऐसे कितने ही दृश्य शब्दों-स्वरों के माध्यम से इस नाटक में उभरते हैं। एक लंबी कविता का रूपांतरण नाटक में होने के बावजूद जिस तरह पात्रों को कविता के अंश सौंपे गए हैं, इससे संवादों का तारतम्य बहुत प्रवाही और प्रभावी बन पड़ा है।

किसी लंबी कविता का नाट्य रूपांतरण करते समय उसके शिल्प पर विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। इस कृति में ऐसा हुआ है। वाचक स्त्री, पुरुष का स्वर, त्रिभुवन नामक पात्र, स्वर 4 व्यक्तियों के, फिर पिता, वृद्ध, पत्नी किसान के साथ भाषण का स्वर, फैसले का स्वर, बच्ची का स्वर और समूह स्वर को गूंथ कर पूरी कविता को जो सार्थकता सौंप गई है, वह हमारे वर्तमान परिवेश, वातावरण और हालात को बयान करने में सफल हुई हैं। भाषा में आक्रोश है। हिंसा, शोषण,

छल-कपट, घुटन के लिए जिम्मेदार लोगों को कटघरे में खड़ा किया गया है। राजनीति शब्द का उच्चारण किए बिना उसके चरित्र को उघाड़ा गया है। स्त्री और घर पर लिखे शब्द कालजयी और सामयिक रहेंगे- ''औरत अपने जादू से/हवा में दीवारें खड़ी करती रही/शताब्दियों से दीवारों के भीतर घर/घर के भीतर सपना/और अपने भीतर धमन-भट्ठी तैयार करती रही/औरत/चुप रहने की आग में जलते हुए/दूसरों की हिंसा को गुप-चुप निगलते हुए/औरत झरने से चट्टान में तब्दील हो रही है...।''

शोषण और छलावे को कृतिकार ने बहुत सूक्ष्मता से अनुभव किया और बेबाक होकर कह दिया। केवल यह दृश्यांकन न होकर उससे निपटने के लिए संकेत भी यहां-वहां दिए गए हैं। त्रिभुवन के मुख से, ''वे सब हमारे बच्चों के आज और कल को/भून कर खा रहे हैं और/ उनकी आँखों के देखने को/ अपनी बागड़ के भीतर कैद कर रहे हैं/ और तुम खुरपी से घास छील रहे हो... जबकि छीलने और काटने को और भी/ कितना कुछ है दुनिया में...।'' इस तरह पराजय के प्रतिरोध का संकेत भी इसमें दिया गया है।

चंद्रकांत देवताले की कविताओं की अपनी पहचान है। वे आसपास से प्रतीक उठाते हैं और बड़ी सहजता से अपने कथ्य में गूंथ कर सच का साक्षात्कार करते हैं। अपने परिवेश में घट रहे तमाम घटनाओं को वे नए शब्द देकर कविताओं में समेटते हैं। कभी अमूर्त पर गौर करने पर मूर्तता का स्पष्टता लिए उनके शब्द पारदर्शी हो उठते हैं- ''यह मस्तिष्क है या धरती का मूलकंद/बचना कुछ नहीं था उस सपने के सिवा/सुखे ठूंठ पर कैसे फूटेंगी शाखें, खिलेंगे पत्ते/... वह बुदबुदाया- भूखंड तप रहा है...।'' विसंगति, विसंवाद और विरोधाभास पर भूमिगत मुकदमे चलते हैं और... ''अग्निकांड के सबूत नहीं मिलते/ तितली उड़ रही है और शहनाई का कुछ नहीं बिगड़ा/ गवाह केवल पेट है/ पापी पेट का क्या भरोसा/रात भर नींद आई है जिन्हें/जो

मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधा और बेशुमार गति हासिल करने के लिए तमाम अन्वेषणों-खोजों को हथियार बनाया। उसकी यह यात्रा निरंतर जारी है, परंतु उसकी इस यात्रा का घर्षण प्रकृति से हो रहा है। भौतिकता और पृथ्वी के अनवरत संघर्ष से जो चिंगारी उठ रही है, उससे यह 'भूखंड तप रहा है'। इस ताप-तपन की चिंता को कवि चंद्रकांत देवताले ने बहुत बारीकी से अपनी कविता में व्यक्त किया है। 'भूखंड तप रहा है' उनकी लंबी कविता है।

हँस सकते हैं, बेदाग साबुत हँसी/वे हत्यारे नहीं हैं...।''

रचनाकार चुपचाप समाज में घट रही दुर्घटनाओं का आकलन करता है। वह मूक गवाह नहीं बनता, बल्कि अपने शब्दों से वह सारे दृश्यों को उजागर करता है। पारदर्शी सच्चे शब्दों का सहयात्री होता है। शोषण और अन्याय को 'क्लिक' करता है। देवताले के शब्द, ''शिकारी कुत्तों के हाथों में मशीनों और/चेहरों की लगामें हैं और वे इस वक्त/बड़ी सफाई से घर को छाया/छाया को पेड़/और पेड़ को धरती से जुदा कर रहे हैं...।'' फिर पूरा समूह यानी समाज स्थितियों का बयान करता है- ''एक मां घर के पेड़ का एक सपना/असंख्य मांएं और धरती पर गाते हुए/पेड़ों के उतने ही सपने/पर उतने ही कुल्हाड़ियों के हमले/सपनों की गर्दनों पर पेड़ों के खिलाफ...।'' और भी, ''सब बाहर खड़े हैं- जूठी पत्तलों के इंतजार में/भीतर महाभोज में शामिल हैं/खून और हड्डियों के व्यापारी...।''

इतनी सारी विसंगतियों और दबावों के बावजूद बहुत साहस मनुष्य के भीतरी तल में बचा रह जाता है। उस साहस को बटोरने की जरूरत होती है। चंद्रकांत देवताले स्थितियों का एक्स-रे ही नहीं करते, वरन् साहस जगाने और अमर-आशा का पुनरूत्थान के लिए आह्वान भी करते हैं- ''हजार तरीकों से प्यार किया है हमने/पृथ्वी से, स्त्री से/ दोनों के भीतर ब्रह्मांड की खुशियों के झरने/दौड़कर छू लेने वाली आँखों से देखो/सब देखो/ नीली गौरैया नदी को देख रही है/तिरछी नजर से...।''

चंद्रकांत देवताले ने अपनी कविता में अछूते मुहावरों/शब्द-संकेतों के विशिष्ट प्रयोग किए हैं- 'भूख के पेट पर ईश्वर', 'दगाबाज घड़ी', 'नींद में रोटी छीनते जंगली कुत्ते', 'पांवों में घास', 'यातना का खुदा हुआ रोजनामचा', 'रक्त से काल का अभिषेक', 'भूख की जिह्वा', 'कोहरे में फोन नंबर मिलना', 'जुबान को चूहे मारने की मशीन पर रख देना', 'धुएँ के घोड़े', 'भूमिगत मुकदमे', 'भाप का धक्का', 'किवदंतियों के दांत', 'सुख की पिंडलियां' आदि।

एक दीर्घ कविता में कभी-कभी विषयांतर की संभावना रहती है, लेकिन 'भूखंड तप रहा है' एक लय के साथ सहज प्रवहमान है। कवि का कथ्य और नाट्य-शिल्प इतने घुल-मिल गए हैं कि कृति का प्रभाव अक्षुण्ण हो गया है।■